RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

नयी सदी के स्त्री प्रष्न : संदर्भ संजीव का कथा साहित्य

रजनी कुमारी

पीएच.डी. शोधार्थी हिन्दी विभाग जम्मू विष्वविद्यालय जम्मू – 180006

बीसवीं सदी के शुरूआती समय को महिला जागरण का युग और उतरार्द्ध को महिला प्रगति का युग कहा जा सकता है। यदि इक्कीसवीं सदी की बात करें तो इसे महिला–युग ही कहें तो कोई अतिषयोक्ति नहीं इस तथ्य की प्रासंगिकता और सार्थकता पर यदि विचार किया जाए तो हम देखते हैं कि हमारे समाज में स्त्रियों की स्थिति में उत्तरोतर विकास के बावजूद भी महिलाओं की स्थिति में सुधार के बजाय नये–नये अंतर्विरोध जन्म ले रहें हैं जो सुधार की सम्भावनाओं को कम कर धुंध को और भी गहराते नज़र आ रहे हैं। इस धुंध में प्रगति और उत्तरोतर विकास की आषा बहुत ही क्षीण होती जा रही है, ऐसे में प्रत्येक प्रबुद्ध समाजचेता का यह दायित्व बनता है कि वह समाज की आधी आबादी तो नहीं कहूँगी क्योंकि महिला अपराधों में भ्रूण हत्या जैसे अमानवीय कृत के चलते वह आधी आबादी नहीं बन पाती। परन्तु समाज की निर्माणकारी शक्ति होने के नाते उसकी कारुणिक स्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर एक नई दिषा की ओर संकेत करें चूंकि अभी इक्कीसवीं सदी प्रारम्भिक अवस्था में है आने वाले समय में इसे सही अर्थों में महिला –युग का दर्जा दिलवाया जा सकता है बषर्ते हमारे प्रयास सम्पूर्णता में होने चाहिए।

स्त्री चाहे किसी भी वर्ग या धर्म की हो, शोषण का षिकार बनती ही है। इस कठोर वज्र से बच पाना उसके लिए संभव नहीं। प्रत्येक वर्ग या धर्म में अपने नियम कानून तथा नैतिक तकाजे रहते हैं और उसी पर उस विषिष्ट वर्ग या धर्म के लोगों की मान मर्यादाएँ भी निर्भर करती हैं। इस तथ्य से तो हम भली–भाँति अवगत हैं परन्तु उन नियमों, कानूनों या तकाजों के मध्य एक स्त्री को किन संकीर्ण रास्तों से गुज़रना पड़ता है और उस संकीर्णता की छीलन से कितना लहुलूहान होना पड़ता है उस पीड़ा को बहुत कम लोग महसूस कर पाते हैं।

मुस्लिम धर्म में स्त्री की विचारणीय स्थिति में तलाक की समस्या प्रमुख है। मुस्लिम स्त्री चाहे किसी गरीब तबके से हो या फिर स्वयं जज ही क्यों न हो तलाक की समस्या दोनों के सामने समान रूप से मुँह बायें खड़ी है। इस समाज में पुरुष अपनी वर्चस्ववादी प्रवृति के चलते सदैव अपनी श्रेष्ठता के मद में रहता है। दूसरी ओर स्त्री पूरी मेहनत और लगन से घर को चलाने के प्रयास में रहती है परन्तु पुरुष स्त्री से ऊब कर मौका पाते ही उसे बदचलन सिद्ध कर देता है। वह केवल तीन बार तलाक, तलाक, तलाक कहकर स्त्री से अपना पिंड छुड़ाने में सफल भी हो जाता है। यह बिना तर्क का न्याय प्रत्येक बुद्धिजीवी को सोचने पर विवष करता है। दूसरी ओर हिन्दु धर्म में भी स्त्री अन्याय और पुरुषसत्तात्मक समाज द्वारा बनाए नियमों में पिसने को विवष है। स्त्री शोषण के विभिन्न रूपों में से एक अति कारुणिक रूप 'अग्नि–परीक्षा' भी है। हिन्दु धर्म में इस अग्नि परीक्षा का प्रावधान केवल स्त्री के लिए उसके चरित्र की पवित्रता को आंकने` लिए है और पुरुष के लिए ऐसा कोई नियम नहीं है। हद से हद पुरुष अपनी शराफत का प्रमाण देने के लिए पवित्र धर्म ग्रन्थों की सौगन्ध खाकर या फिर गंगा जल को हाथ में उठाकर अपनी बात कह देने भर से ही उसकी सच्चाई सिद्ध हो जाती है। यहां यह तथ्य भी विचारणीय है कि समाज की रूढ़ मानसिकता को बनाने में शास्त्रों और धर्म ग्रन्थों का पूरा योगदान रहा है क्योंकि मिथक बहुत बार गलत कार्य के लिए भी प्रेरित करते हैं। रामायण में सीता को अग्नि परीक्षा देनी पड़ी थी परन्तु उसमें यह बताया गया कि वह उस परीक्षा में सफल हो गई थी क्योंकि वह पवित्र थी इसलिए आग उसके पांव को नहीं जला पाई। तब से यह धारणा रूढ़ हो गई और केवल पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ स्वयं भी अन्धश्रद्धा के चलते यह सोचने लगीं कि यदि हमारा चरित्र साफ–पाक है तो सीता माता की तरह आग उन्हें छू भी नहीं पाएगी और कूद गयी अग्नि परीक्षा में। बिना तर्क के इस प्रकार के नियमों पर चलने वालों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रकृति अपने नियमों के अनुसार चलती है। आग का कार्य है जलाना फिर वह पवित्र–अपवित्र में भेद नहीं करती। आज भी हिन्दु समाज के कुछ पिछड़े इलाकों में अग्नि परीक्षा जैसी अतार्किक मान्यताएँ व्याप्त हैं जो समाज के लिए चुनौती बनी हुई हैं। संजीव द्वारा रचित कहानी 'मदद' स्त्रियों के उपर्युक्त उत्पीड़न को बड़ी ही बारीकी से उजागर करते हुए तर्कों सहित यथार्थ स्थिति का आकलन करने में सक्षम है। कहानी की शकीला और शान्ति दोनों अलग–अलग धर्मों से सम्बन्ध रखती हैं परन्तु शोषण की जंजीरें दोनों को लहुलूहान ही करती हैं। शकीला द्वारा अपनी पांच साल की बच्ची के सम्बन्ध में यह कहना कि, "एक बात पूछे हाकिम, ई हमर बेटी तो कोई पाप नयं किया। हम एकर अगिन–परिच्छा लें तो नयं जरेंगे रमैन के हिसाब से?"...

"क्या पागलपन है?" ...

"हमनियें पागल हैं...? कोई चीज़ पाक हो कि नापाक, आग केकरो नयं छोड़ने वाला है जराने से, तो रमैन में झूठ काहे लिखत है कि सीताजी नयं जरा ...? हमनियें पागल हैं कि हम गलत करें तो हमर दोसर सजा और हमार मरद कोई पाप करे तो ओकर दोसर सजा? ई खुदा के जबान है ...? ऊ तलाक दे सके है हम नयं?"[1] समाज के सम्मुख सुलगते प्रष्नों को उपस्थित तो करता है साथ ही संजीव द्वारा उठाए गए प्रष्न पहले से चली आ रही मान्यताओं के विषय में नये सिरे से विचार करने की दृष्टि भी प्रदान करते हैं।

स्त्री प्रष्नों में 'यौन सुचिता' का प्रष्न एक बड़ी चुनौती के रूप में स्त्री अस्मिता को मिटाए जा रहा है। यह चुनौती

RRIJM 2015, All Rights Reserved

स्त्री उत्पीड़न के प्रारम्भ से लेकर आज तक ज्यों की त्यों बनी हुई है। आज के वैज्ञानिक युग में प्रवेष के उपरान्त हम अपनी उपलब्धियों और उत्तरोतर प्रगति पर गर्वित होते हुए थकते नहीं हैं परन्तु यौन सुचिता की बात आते ही सामाजिक मानसिकता मध्यकालीन सोच से कभी ऊपर नहीं उठ पाती। ऐसे में प्रष्न यह उठता है कि आज हमारे समाज में यहां तीन–तीन साल तक की बच्चियों के साथ बलात्कार होते हैं तो वहां स्त्री के कौमार्य की कीमत ही क्या रह जाती है? इस यौन सुचिता के चंगुल से सामान्य स्त्री की तो बात ही छोड़िए एक क्रान्तिकारी समाजसेविका का बच निकलना भी सम्भव नहीं। यदि स्त्री को समाज में क्रान्ति के लिए, सामाजिक कार्यों के लिए अपनी उपस्थिति दर्ज करवानी है तो उसे घर से बाहर निकलना होगा। अपने कार्य क्षेत्र में जाकर स्थितियों का आकलन भी करना पड़ेगा और आज हम बेषक नयी सदी में प्रवेष कर चुके हैं परन्तु कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि स्त्री के लिए कोई ऐसा स्थान है जहां स्त्री पूर्णता सुरक्षित है। एक तो स्त्री दूसरा क्रान्तिारी यह बात हमारे समाज में पचाने योग्य नहीं है। उसे तोड़ने का सबसे अधिक प्रचलित और आसान तरीका है उसा बलात्कार। ऐसी अमानव घटना के उपरान्त जिस समाज के लिए वह कौमार्य (वर्जनिटी) को भी दांव पर लगा देती है वह भी उसके पक्ष में खड़ा नहीं होता, हाँ लांछन लगाने के लिए जरूर सामने आता है। विडम्बना यह है कि यदि अपने पर हो रहे इस उत्पीड़न का वह विरोध भी करती है तो भी उसका साथ देने वाला कोई नहीं और यदि बिना प्रतिक्रिया के किसी गुण्डे की बात मान लेती है तो भी समाज की थू–थू ही उसके हिस्से आती है।

संजीव की कहानी 'अवसाद' स्त्री के इसी प्रकार के शोषण के प्रति समाज को संवेदनषील बनाने का प्रयास है साथ ही व्यक्ति की मानसिकता में भरे मवाद को छील कर रख देने में सक्षम है। कहानी की काबेरी सामाजिक उत्थान हेतु आदिवासियों के लिए कार्य करती है और नक्सल मूवमेंट के दौरान उसे अनेक अमानवीय पीड़ाओं से गुज़रना पड़ा इस आन्दोलन के दौरान उस पर जितने भी असहनीय प्रहार हुए उनके पीछे के कारण तो समझ में आते हैं किन्तु उसके अपने समाज में आदर्ष समझे जाने वाले व्यक्तियों ने भी उसका शारीरिक शोषण किया। यह तथ्य विचारणीय है कि क्या स्त्री कभी भी इस देह की लाचारगी से मुक्त नहीं हो पाएगी? आज नयी सदी के पंद्रह वर्ष समाप्त हो जाने के उपरान्त भी यह कहने में लज्जा महसूस होती है कि स्त्री यौन शोषण में कमी आने के बजाय बढ़ोतरी ही हो रही है और आने वाले समय में भी इस अपराध की समाप्ति की सम्भावनाएँ क्षीण ही नज़र आ रही हैं।

काबेरी, सभी प्रकार का उत्पीड़न सहकर भी हार नहीं मानती। अब वह अपनी सृजनात्मक क्षमता के बल पर समाज को नई दिषा देना चाहती है। वह अपनी आत्मकथा लिखना चाहती है परन्तु उसके सभी साथियों और प्रकाषक की नज़र केवल उसकी आत्मकथा के उस अंष पर है कि वह अपने साथ हुए शारीरिक शोषण को कितना खोलकर लिखती है। आत्मकथा का प्रकाषन, पुरस्कार और विदेष यात्रा सभी बातें इसी तथ्य पर निर्भर करती हैं। कोई भी यह नहीं जानना चाहता कि समाज उत्थान के लिए उसके प्रयास कितने सार्थक थे या फिर उसने आदिवासियों के लिए कौन–कौन से कार्य किए। सभी की निगाह केवल उसके शरीर पर है।। क्या इस प्रकार की मानसिकता किसी बलात्कार से कम है? आखिर समाज स्त्री के ऐसे अकल्पनीय दृष्यों को पढ़कर या उसके मुँह से सुनकर किस आदिम इच्छा की तृप्ति करना चाहता है? काबेरी के स्वयं के शब्दों में समाज से किया गया यह प्रष्न कि, "तुम्हारे शब्दों में कहूँ तो तुम्हारे उस नराधम ने किसी दुर्बल क्षण में मुझसे एक बार बलात्कार किया था, और तुम लोग ...? तुम लोग सहानुभूति जताने के नाम पर बार–बार करते आ रहे हो। क्यों?"[2] तथाकथित मानसिकता रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति से किया गया है। काबेरी जैसी क्रान्तिकारी विचारधारा रखने वाली स्त्री की आत्मकथा समाज के लिए प्रेरणा भी बन सकती थी परन्तु यह जड़ मानसिकता वाला समाज स्त्री के केवल कमज़ोर क्षणों को ही याद रखता है और प्रताड़ित करने का कोई भी मौका हाथ से निकलने नहीं देता।

स्त्री यौन शोषण का एक कारुणिक रूप और भी है और वह है – छोटी जाति की स्त्री का शारीरिक शोषण। वैसे तो हमारे समाज में कानूनी तौर पर जाति भेद को समाप्त कर दिया गया है किन्तु यह एक कड़वी सच्चाई है कि व्यवहारिक तौर पर आज भी ऊँच–नीच का भेदभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया है और अधिकतर ग्रामीण इलाकों में यह बहुत प्रबल रूप धारण किए हुए है। यह समस्या तो जाति भेद का षिकार होने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए चुनौती है परन्तु एक स्त्री छोटी जाति में जन्म लेकर दोहरे शोषण का षिकार बनती है। एक तो स्त्री दूसरा छोटी जाति और सबसे बड़ी बात यह कि छोटी जाति की स्त्री होकर गुलामी न करे यह तो किसी अपराध से कम नहीं। स्त्री के गरूर को तोड़ना है या फिर उसके अस्तित्व को ही समाप्त करना है तो केवल उसकी आबरू से खेला तो समझो कार्य हो गया। संजीव द्वारा रचित कहानी 'बीहड़' स्त्री के इसी शोषण को उजागर करती है। कहानी की सिताबा देवी छोटी जाति से सम्बन्ध रखती है और उसका अपराध केवल इतना था कि उसने बड़े लोगों के अत्याचार को चुपचाप नहीं सहा। प्रतिक्रियास्वरूप 12 लोगों ने उसका सामूहिक बलात्कार किया और वह भी उस समय जब वह बीमार और गर्भवती थी। वह बहुत रोई गिड़गिड़ाई परन्तु किसी ने भी उसकी स्थिति पर तरस नहीं खाया। अमानवीयता की हद देखिए कि सब लोग तमाषबीन बनकर उसका लुटना देखते रहे किसी ने भी आगे बढ़कर उसका साथ नहीं दिया। उस समय तो उसकी अकेली ताकत कुछ न कर सकी परन्तु वह हारी नहीं उसने अपने अपमान का बदला उन 12 अत्याचारियों को गोलियों से भूनकर उनकी हत्या करके पूरा किया। उसके अपमान के समय कोई सामने नहीं आया किन्तु अपनी संवेदनषीलता का परिचय देने समाज उस समय जरूर आगे आया जब सिताबा ने हथियार उठाया और यह कहा गया कि 12 लोगों की हत्या करते हुए इसे दया नहीं आयी? इस प्रष्न का उत्तर हमें सिताबा के शब्दो में मिल जाता है – "पूरागाँव एक था। पूरी जात एक थी ... उनके आदमी हमको कुत्ते की तरह नोचते रहे, वे छत से तमाषा देख रहे थे ... सब थे – बूढ़े, बच्चे, जवान, औरत, मरद – सब? किसी ने रोका नईं, टोका नईं, उनकी अपनी बहन, बेटी के साथ येई हुआ होता तो भी क्या ऐसाई करते ...? धमाके हो जाते साब धमाके। खून की नदी बह जाती। मैंने तो सिर्फ बारह ई मारे

वे समूचे गाँव को भून के रख देते ...जब तैने मो पे अपनी बेर कछू भी दया ना दिखाई तो भैये, मेरी बेरमो से दया क्यों चाए है?"[3] स्पष्ट है कि स्त्री से दया की उम्मीद करने से पूर्व स्त्री के प्रति भी दया और सहानुभूति दिखानी होगी। समाज को अपनी मानसिकता में बदलाव लाना होगा।

महिलाओं के प्रति हिंसा गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाती है। जन्म से पूर्व लिंग चयन और कन्या होने पर भ्रूण हत्या जैसी अमानवीयता पर यदि विचार किया जाए तो इस समस्या की गम्भीरता स्पष्ट तौर पर नज़र आने लगती है। पहले बालिका षिषु हत्या प्रचलन में हुआ करती थी परन्तु उसके बाद बालिका भ्रूण हत्या अस्तित्व में आयी। जब तक भारतीय समाज वैज्ञानिक तकनीकों से रू–ब–रू नहीं हो पाया था तो यदि किसी स्त्री के साथ जबरन या न समझी के चलते उसके भोलेपन का लाभ उठाकर उसका शारीरिक शोषण किया जाता था तो ऐसे में अनचाहे बच्चे को जन्म देने के अलावा उसके पास कोई विकल्प नहीं बचता था। परन्तु वैज्ञानिक तकनीकों ने स्त्री के लिए नवीन विकल्प खोजकर अपनी सार्थकता को तो सिद्ध किया किन्तु इस तकनीक का सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से प्रयोग न होकर, इसके द्वार उन लोगों के लिए भी खोल दिए गए जो केवल लड़के की चाह रखते हैं। आज तो यह तकनीक एक व्यवसाय बन चुकी है जिस पर कानूनी प्रतिबन्धों के बावजूद भी यह अपराध दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। मूक और शोषित समाज के साहित्य में स्थान देने वाले प्रबुद्ध लेखक संजीव ने 'रह गई दिषाएँ इसी पार' उपन्यास में कन्या–भ्रूण के मूक रुदन को वाणी प्रदान की है। कन्या भ्रूण हत्या का निम्न चित्र किसी भी संवेदनषील व्यक्ति को विचलित कर सकता है, "फिल्म में जीवित मांस पिंड का अक्स उभरता है ...कोई बच्ची है माँ के गर्भ की सुरक्षित दुनिया में मछली की तरह किल्लोल करती हुई, सॅक्षन एबारषेन मषीन के पहुँचते ही माँ से जुड़ी बच्ची चौंक कर दूसरी ओर भागती है। ... सार्क की तरह काटने वाली मषीन का मृत्युग्रासी जबड़ा उसकी ओर बढ़ता है और भाग–भाग कर छुपती बेहद डरी बच्ची ठिठक जाती है, मुँह खोलकर सिर को पीछे तानती हुई चीखती है एक खामोष नंगी चीख। अब उसे कच–कच करके काटा जा रहा है गाजर मूली की तरह। सिर तोड़ा जा रहा है। सक–आउट किया जा रहा है।"[4] विचारणीय है कि यदि इसी गति से कन्या भ्रूण–हत्या होती रही तो सृष्टि का संतुलन तो बिगड़ेगा ही साथ ही सामाजिक विकास भी पूरी तरह बाधित हो जाएगा। इस अमानवीय कृत्य के पीछे की जर्जर मान्यता कि पुत्र ही परलोक सुधारता है को बदलना होगा क्योंकि जो पुत्र बनकर इस लोक को ही नहीं सुधार पा रहा है वह परलोक क्या सुधारेगा? और यदि पुत्री इस लोक को सुधार सकती है तो वह परलोक भी सुधार सकती है।

स्त्री प्रष्नों में 'यौन उद्योग' भी आज के समय का एक महत्वपूर्ण प्रष्न बन चुका है परिणामतः इसके पहलुओं पर भी विचार करना अनिवार्य हो जाता है। गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यौन उद्योग एक हिंसक अपराध ही नहीं मानवता की बुनियादी धारणा का उपहास भी है। इस उद्योग में मांग के अनुसार लड़कियों की कोई कमी नहीं। कुछ तो जबरन इस आग में झोंक दी जाती हैं और कुछ अभावों के चलते स्वयं ही इस कांटो भरी राह का चयन करती हैं। परन्तु दोनों ही स्थितियों में शोषण तो स्त्री का ही होता है। आज इस देह व्यापार का यथार्थ बड़ा ही जटिल रूप धारण करता जा रहा है। समय के साथ स्त्री खुद को यौन उद्योग में निवेषित करना सीखती चली जा रही है। आज बहुत सारी स्त्रियाँ इस देह व्यपार से जुड़कर किसी अपराध बोध से ग्रसित नहीं हैं। यहाँ प्रबुद्ध लेखिका प्रभा खेतान की विचारधारा आने वाले समय में यौन उद्योग की गम्भीरता की ओर संकेत करती है कि, "आने वाले पचास वर्षों में देह व्यापार की मूल संरचना बरकरा रहेगी। बस इस व्यवस्था में जीवन स्तर ऊंचा होता जाएगा तकनीक का प्रयोग बढ़ जाएगा। तथा यौन इच्छाओं की पूर्ति के रूप में इस धंधे के व्यावसायिक स्वरूप को मान्यता मिल जाएगी।"[5]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि स्त्री के प्रष्न केवल उसके स्त्री होने की स्थिति तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसकी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि स्थितियों से भी जुड़ते हैं। इसलिए स्त्री प्रष्न अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय है। इसका उद्देष्य मात्र पुरुषों को कटघरे में खड़ा करना नहीं है अपितु भविष्य में वर्चस्व विहीन समाज की स्थापना कर स्त्री के सबलीकरण के प्रयत्न हैं।

संदर्भ

1. संजीव, मदद (कहानी), पृ. 68–69
2. " अवसाद (कहानी), पृ. 123
3. " बीहड़ (कहानी), पृ. 294
4. " रह गई दिषाएँ इसी पार (उपन्यास), पृ. 310
5. उषा कीर्ति राणावत, प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, पृ. 60

RRIJM 2015, All Rights Reserved